National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(66): 37-42
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

संजय कुमार
शोध छात्र, हिन्दी विभाग,
स्कूल ऑफ मानविकी एवं सामाजिक-विज्ञान विभाग,
श्री गुरू राम राय विश्वविद्यालय-देहरादून, उत्तराखण्ड

डॉ. गरिमा डिमरी
सहायक प्राध्यापक,
स्कूल ऑफ मानविकी एवं सामाजिक-विज्ञान विभाग,
श्री गुरू राम राय विश्वविद्यालय-देहरादून, उत्तराखण्ड

Correspondence:
संजय कुमार
शोध छात्र, हिन्दी विभाग,
स्कूल ऑफ मानविकी एवं सामाजिक-विज्ञान विभाग,
श्री गुरू राम राय विश्वविद्यालय-देहरादून, उत्तराखण्ड

गढ़वाल के लोकसाहित्य में लोककथाओं, लोकगाथाओं व लोकगीतों का लोकजन पर प्रभाव

संजय कुमार, डॉ. गरिमा डिमरी

प्रस्तावना- गढवाल के लोकसाहित्य का महत्व बहुत व्यापक है। इसमें पौराणिक साहित्यिक व ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश होता है। इसके साथ-साथ भाषा व बोली के संरक्षण में भी यह लोकसाहित्य महत्वपूर्ण साबित हुआ है। क्योंकि जिन शब्दों को आम बोलचाल की भाषा में एक दूसरे को कहा व सुना जा रहा है, वही बोली या भाषा लिखित रूप से समझी जाय व पाठक के सम्मुख आये तो यह अत्यन्त हर्ष के साथ-साथ भाषा के संरक्षण में महत्वपूर्ण होता है। डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' अपनी पुस्तक 'गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य लोकसाहित्य' में उल्लेख करते हैं कि ''पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद जब पंवार-वंशज महाराजा अजयपाल ने यहां के सब ठाकुरी राजाओं और सरदारों को जीतकर एक सुविस्तीर्ण राज्य स्थापित किया, तब अधिक गढ़ों (52 गढ़) के होने के कारण लगभग सन् 1500.1515 के बीच इस प्रदेश का नाम 'गढ़वाल' पड़ा। वैसे गढ़वाल के पांचाल-देश, देवभूमि, तपोभूमि, बदरीकाश्रम आदि कई नाम मिलते हैं''।[1] यहां के सांस्कृतिक महत्व को समझने के लिए हमें यह जानना अनिवार्य है कि इसमें भाषाई और पारिवारिक जीवन को किस प्रकार से सामाजिक सरोकारों में एकत्व प्राप्त हुआ है। और इनसे निर्मित लोकसाहित्य आखिर कौन सी सामाजिक व्यवस्थाओं का मेल है। इसमें मांगलगीत, लोककथाऐं, लोकगाथाऐं, लोकनाट्य, आणा, पखाणा, लोकगीत व अनेक लोकोक्तियां आदि प्रमुख रूप से सम्मिलित होती हैं। गढ़वाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कुछ न कुछ साहित्य का खजाना छुपा हुआ है। इनका आम लोकजन पर गहरा प्रभाव है। यहां की हिमश्रृखंलाऐं, निर्जन वन, समतल बुग्याल, लहलहाते खेत, पावन नदियां यहां की प्राकृतिक सुन्दरता के साथ-साथ स्वयं में एक कथानक हैं। इन्हीं प्राकृतिक स्थापित मानकों के इर्द-गिर्द लोकगीतों का भी जन्म हुआ। यहां की धरा में अनेक तपस्वियों, ऋषि-मुनियों व ईष्वरीय शक्तियों का अस्तित्व रहा है। अपनी प्राचीन परंपराओं को मिट्टी पत्थर के घरों व सीमित संसाधनों के साथ आगे बढ़ाते हुए और सुरक्षित रखते हुए पहाड़ के निवासी आज भी अपने उन्हीं प्राचीन नियमों व परंपराओं को साथ लेकर आधुनिक संस्कृति के मुहाने पर डटे हुए हैं। अपनी मान्यताओं को पूरे सम्मान के साथ निभाते हुए गढ़वाल के निवासी यहां की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। यहां की रीति-नीति के साथ जुड़ी हुई सभी सामाजिक परंपराऐं, मान्यताऐं व आवश्यकताऐं अपने आप में एक मिशाल हैं। इन्हीं के इर्द-गिर्द गढ़वाल की तमाम लोकगाथाऐं, लोककथाऐं, अनेक किवदन्तियां व कहानियां तथा लोकोक्तियां रची व बुनी हुई हैं। इसमें गढ़वाल के महापुरूषों के संघर्ष व उनका योगदान आदि अनेक घटनाक्रमों का सजीव चित्रण है जिनके बारे में अध्ययन करने से नयी क्रान्तिकारी ऊर्जा का संचार होता है।

गढ़वाल का जनजीवन- स्वाभाविक बात यह है कि प्रत्येक प्रदेशवासी या क्षेत्रवासी को अपनी मातृभूमि व अपनी जाति पर स्वाभाविक प्रेम होता है।

जबकि इस धरा पर प्रत्येक इंसान की प्रवृत्ति व संरचना, धर्म, भाशा, व्यवहार, रीति-रिवाज, रहन-सहन, साहित्यिक अभिरूचि सभी भिन्न हैं। परन्तु सभी का सिद्धान्त गुण व दोष पर टिका होता है। अथवा उन्नति और अवन्नति पूरे समाज व जनता के हेतु होते हैं। इस भूमण्डल पर सभी मानवजातियों ने अपनी-अपनी जिम्मेदारियां व अनेक भूमिकाऐं अदा की हैं और यह सभी अनेक साहित्य की पोथियों में सुरक्षित व संरक्षित है। साहित्य की यही महता हे कि वह सम्पूर्ण इतिहास को संरक्षित रखते हुए अपने पास संजोये रखता है। प्राचीन समय से जागर, पांडवलीला, मेले व त्योहार, अनेक लोकगाथाऐं, लोककथाऐं व अनेक परंपराऐं व परिकल्पनाऐं उस संस्कृति को पोषित करते हैं। इसके साथ-साथ गढ़वाल की अनेक मनोवृत्तियां यहां के साहित्य की आधारषिला हैं। पहाड़ का जनजीवन इन्हीं सब आधार विन्दुओं के सापेक्ष गतिमान है। यहां पारंपरिक खेती व पषुधन के अलावा स्थानीय स्तर का स्वरोजगार भी मुख्य व्यवसाय है। लोग ईमानदार व कर्तव्यनिष्ठ होते हैं इसके साथ ही अपनी संस्कृति के प्रति सजग व इसके संरक्षण के प्रति दृढ़ रहते हैं। पुरातन समय के संघर्ष में भी यहां के निवासियों ने अपने धर्म व संस्कृति की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व दांव पर लगाया लेकिन पहाड़ की आन-बान और शान को हमेशा ही सर्वोपरि रखा। यहां की पोशाक भी अपने आप में आकर्षक अव संस्कृति को प्रस्तुत करने वाली है। यहां पर्यटन व आस्था के भी अपरिमित भंडार हैं। जहां पहंुचने पर सभी आगंतुक हर्षोल्लासित हो जाते हैं। गढ़वाल के संघर्ष की व्याख्या अपने लेखन में सूक्ष्मता से करते हुए डा. शन्तन सिंह नेगी अपनी पुस्तक में उल्लेख करते हैं कि "जिस प्रकार भारतीय संस्कृति के लगभग पांच हजार वर्षों का इतिहास प्राचीनकाल से अनेक संघर्ष से गुजरता रहा, जिसमें आर्य, यूनानी(यवन), पल्लव, शक, कुषांण, हूंण, तुर्क, अफगान, मंगोल, पुर्तगाली, डच, फ्रांसिसी और अंग्रेज जातियों का समावेष संघर्ष के फलस्वरूप हुआ। इसी प्रकार गढ़वाल की संस्कृति के लगभग पांच हजार वर्षों का इतिहास (डुंग्री पेंटिंग एवं धावली पुरोला उत्खनन के आधार पर) भी अनेक संघर्षों से गुजरता रहा जिसमें कोल, किरात, खस, कुलिन्द, यौधेय, नाग, पौरव, कत्यूरी, गोरखा, पंवार, मुगल, अंग्रेज जातियों का समावेश भी संघर्ष के फलस्वरूप हुआ जिससे यहां की संस्कृति वाह्नय प्रभाव से अछूती रही।"[2] इन जातियों के समावेष से इनसे जुड़ी संस्कृति व रीति-नीति के साथ ही अनेक भाशाई षब्दों व कहावतों का भी गढ़वाल में आगमन हुआ। यह जुड़ाव जन-जन की भावनाओं से मजबूती से जुड़ता चला गया और यहा की संस्कृति का आधार बन गया यही कारण रहा कि आज भी गढ़वाल कर परंपराऐं व सांस्कृतिक विरासत बेहद मजबूत है।

लोककथा तथा लोकगाथा - गढ़वाल में पुरातन समय में घटित तमाम घटनाचक्रों का एक निष्चित क्रम में मनोभावों के संयोजन से वर्णित व्याख्यान लोककथा अथवा लोकगाथा कहलाती हैं। इसमें सम्पूर्ण गढ़वाल की पुरातन घटनाऐं अलग-अलग समय में वर्णित है। इनमें संवेदनाऐं व भावनाओं का समावेष है जो नयी पीढ़ी को प्रेरणा प्रदान करता है। उदाहरण के लिए गढ़वाल के अनेक वीरों की कथाऐं व गाथाऐं, अनेक वीरांगनाओं की कथाऐं, पांडवों की कथाऐं, ईश्वर की आस्था व चमत्कार से सम्बन्धित घटनाक्रम, यहां के अनेक महापुरूषों के संघर्ष व योगदान से जुड़ी घटनाऐं गढ़वाल से गहरी जुड़ी हुई हैं। इनको सुनकर मन में जोष व स्फूर्ति आ जाती है। ये गाथाऐं व कथाऐं लोकजन पर अपनी छाप छोड़ती हैं। वह अपनी संस्कृति व पूर्वजों पर गर्व करने को तत्पर रहते हैं। पुरातन समय की घटित घटनाओं को लोककथाओं व लोकगाथाओं और कहानियों के माध्यम से सुना जाता है इससे गढ़वाल की अतीत की घटनाओं का वर्तमान में भी उपयुक्त बनाने की प्रेरणा मिलती है। कई कालखण्डों में जिस प्रकार की घटनाऐं पृथ्वी पर घटित हुई उससे बहुत बड़े परिवर्तन की नींव पड़ी। गढ़वाल की अनेक मान्यताऐं आज भी पौराणिक घटनाओं की वजह से निरन्तर अस्तित्व में है इससे कुछ परंपराऐं व सांस्कृतिक रीति-रिवाज आज भी निरन्तर पल्लवित हो रही हैं। पुराने जागरों व पंवाड़ों में भी कई वीरों व आस्था से सम्बन्धित कथाओं का वर्णन निहित होता है। लोककथाओं के प्रसंग में इसके सार्वभौमिक स्वरूप का पूर्व में भी अध्ययन किया जा चुका है। कोई भी कथा या गाथा एक स्थान विषेष तक सीमित नहीं हो सकती बल्कि अलग-अलग नाम अथवा सन्दर्भ के साथ प्रचलित होती है। पौराणिक कथाओं और गाथाओं से यहां के ग्रन्थ भरे हुए हैं। अनेक कहानियां, लोककथा व लोकगाथा को अलगरूपों में अथवा कहानियों व लोकगीतों के माध्यम से जनता के सम्मुख लाने का प्रयास अनेक विद्वानों द्वारा समय-समय पर किया गया है। पुरातन समय की इन अमूल्य विधाओं का आधुनिक समय में भी अप्रतिम महत्व है। क्योंकि नई पीढ़ी के बच्चों को अपने अतीत को जानने का सुनहरा अवसर मिल जाता है। इसका यह भी असर है कि वे स्थान जहां का वर्णन उस समय का है अब वह स्थान पर उस जगह स्थित ही नहीं है इसके अलावा कई नगर भी बदल गये जो कि वर्णित थे। फिर पाठकों व षोधार्थियों के मन में उत्सुकता अधिक हो जाती है कि आखिर किस प्रकार यह स्थल तत्कालीन समय में इतने महत्वपूर्ण रहे होंगे और आज उनका अस्तित्व ही वहां स्थित नहीं है। गढ़वाल की अनेक किवदन्तियां भी पुराने समय से ही पीढ़ीदर पीढ़ी आगे स्थानान्तरित होती रही हैं। साहित्य में ऐसे विषयों का सदैव सम्मान होना चाहिए जो विषय परंपराओं को प्रेरणा के तौर पर आगे बढ़ाते हैं, जिनसे सांस्कृतिक परंपराओं का संरक्षण होता है तथा जिनसे नई पीढ़ी को कुछ न कुछ ज्ञान की अनुभूति होती है। साहित्य के बारे में वैसे भी यह प्रचलित धारणा है कि साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसमें कि परंपरा हो, पर परंपरा के प्रति दुराग्रह न हो, वही सही मायने में जनसाहित्य है। साहित्य ऐसा हो जिसमें एक ओर परंपरा के विकास की बात हो, और वहीं दूसरी ओर अमानवीय और समाज विरोधी परंपरा को समाप्त करने की ताकत भी पैदा करता हो। सहित्य में अतीत हो लेकिन अतीत के प्रति अत्यधिक मोह न हो, तथा वह अतीत में लौटने के मनोविकार न पैदा

करता हो, बल्कि उसमें इतिहास व साहित्यिक विकास की समझभरी दृष्टि हो। इसी धारणा के तहत गढ़वाल की प्रचलित मान्यताऐं व अनेक कथाऐं व गाथाऐं यहां के ग्रन्थों में सुरक्षित हैं। श्री मोहनलाल बाबुलकर अपनी पुस्तक में उल्लेख करते हैं कि ''गढ़वाल में सरल व सीधी शैली में कथाऐं उपलब्ध होती हैं। कथा कहने वाला गांव का ही कोई बुजुर्ग व्यक्ति होता है जो कि नहीं के बराबर पढ़ी-लिखी होती हैं लेकिन बेहद अनुभवी होती हैं। गांव के इस बूढ़े या बूढ़ी के मुंह से साधारण तथा स्पष्ट वाक्य निकलते हैं। पूरे गढ़वाल में कथाऐं गद्य रूप में उपलब्ध होती हैं लेकिन किन्हीं कथाओं के साथ पद्य में भी उपलब्ध होते हैं। लगभग सभी कथाऐं चाहे वे देवताओं से सम्बन्धित हों अथवा व्रत, भूत, प्रेत, पषु-पक्षी या मनोरंजक ही क्यों न हों साधारण बोल-चाल के शब्दों में प्रस्तुत की जाती हैं। इनका अन्त भी लोक की मांगलिक भावना के अनुसार ही किया जाता है''।[3] इसी प्रकार की लोकगाथाऐं भी होती हैं जो कि गांव अथवा क्षेत्र विषेष के किसी जिम्मेदार व्यक्ति द्वारा सुनाई अथवा प्रस्तुत की जाती है। जिससे सभी को तत्कालीन समय में घटित घटनाक्रम की जानकारी मिलती है और वे उस गाथा अथवा कथा पर गर्व अथवा रोष का अनुभव करते हैं। लोकगाथाऐं भी सामान्यतया जागरों के साथ ही जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं। और यह वार्तागायन द्वारा ही प्रस्तुत की जाती है। और जन-जन तक उसका गायन और अर्थ बताया जाता है। इसी प्रकार साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि से लोककथाऐं लोकसाहित्य की अमूल्य निधि है। कथाऐं मूल रूप से राजा-रानी, पषु-पक्षियों, तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेतों व हास्य व्यंग्य आदि से सम्बन्धित हैं। क्योंकि इनका उद्देष्य मनोरंजन व साथ ही कुछ संदेष देना होता है। इससे यह तो निष्चित है कि जब से लोक का अस्तित्व स्थापित हुआ होगा तभी से लोककथाओं ने भी जन्म लिया होगा, क्योंकि इनका प्रार्दुभाव कब से षुरू हुआ होगा इसके बारे में निष्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। डा. गोविन्द चातक अपनी पुस्तक 'उत्तराखण्ड की लोकगाथाऐं' में उल्लेख करते हैं कि ''जहां तक लोकसाहित्य का प्रष्न है गढ़वाली लोकसाहित्य अपने में प्रयाप्त समृद्ध है। गढ़वाली लोकगीतों में भी लोकगाथाओं का समावेष पर्याप्त होता है। इसलिए लोकगाथाओं को संकलित करके उन्हें प्रकाषित कराके तथा गढ़वाल के लोकसाहित्य पर षोधकार्य कर एक महान कार्य किया गया है। लोकगाथाओं को चार प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है- (1) जागर-धार्मिक गाथाऐं, (2) पंवाड़े-वीर-गाथाऐं, (3) प्रणव गाथाऐं, (4) चैती गाथाऐं''।[4] कुल मिलाकर कथाऐं व गाथाऐं गढ़वाल के जातीय जीवनचर्या तथा अनेकों आशाओं व आकांक्षाओं तथा कल्पनाओं के साथ मन की धारणाओं को व्यक्त करती हैं। समाज को घुलमिल कर रखने व अपनी आस्था को सामूहिक रूप में प्रदर्षित करने के लिए जागर भी महत्वपूर्ण हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से भी एवं सामाजिक दृष्टि से भी गढ़वाल में इन सब विधाओं का महत्वपूर्ण प्रचलन पाया जाता है। आज इनके संरक्षण की आवष्यकता है जिस प्रकार प्रकृति, पषु-पक्षी, किसान-मजदूर, राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, निर्दयी व नेक इंसान, सभी प्रकार के किरदार सम्मुख आते हैं। इनकी भूमिका मनोरंजक व महत्वपूर्ण संदेष प्रस्तुति की होती है। लोककथा के प्रस्तुतकर्ता के हुनर से यह अत्यधिक मनोरंजक व अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक हो जाती हैं।

लोककथाओं अथवा गाथाओं में उपलब्ध जानकारी - लोककथाओं या गाथाओं से महत्वपूर्ण जानकारी के अतिरिक्त मनोरंजन का भी पूर्ण समायोजन होता है। श्रोता या पाठकगण इन कथा कहानियों को ध्यानपूर्वक पढ़ने और सुनने के बाद कुछ महत्वपूर्ण जानकारी हासिल कर लेते हैं। उसे अपने अतीत पर गर्व होने के साथ-साथ कुछ नयी सोच व ऐतिहासिक साक्ष्यों का खजाना हासिल हो जाता है। क्योंकि जो भी गढ़वाल के पौराणिक जन-जीवन में घटित हुआ वह ऐतिहासिक घटनाक्रमों से भरा हुआ है। तब की परिस्थितियों का अनुमान ही लगाया जा सकता है कि किस प्रकार से विपरीत स्थितियों का मुकाबला करते हुए उन महामानवों ने डटकर सामना किया होगा। अभावों से जूझकर व हालातों से लड़कर उन्होंने अपने अस्तित्व को बचाये रखा और अपनी संस्कृति व परंपराओं का कुषलता से निर्वहन भी किया। पुरातन समय से कैसे संगठित होकर उन लोगों ने कठिन पहाड़ी जनजीवन व जंगली जानवरों से मुकाबला करने के साथ ही कई राजवंशों के दंश व काले फरमान को सहा, इसके अलावा ऐसी कई षक्तियां भी यहां के इतिहास में दर्ज हैं जिन्हें कथाओं या अज्ञात सन्दर्भों के माध्यम से सुना अथवा पढ़ा जाता है। गढ़वाली लोकगाथा साहित्य का एक प्रमुख अंग है। युग-युग से लोकमानस की सामूहिक अभिव्यक्ति की एक-एक व्यवस्था सामूहिक सुख-दुख और जय-पराजय प्रकृति की गतिविधियां, वृक्ष, पषु-पक्षी, जन-मन के पारस्परिक सम्बन्ध, बली-पूजा, जादू-टोने आदि का समावेष हमारे लोकसाहित्य में अनेक माध्यमों से मिलता है। डा. षिवानन्द नौटियाल अपनी पुस्तक 'गढ़वाल की लोकगाथाऐं' में उल्लेख करते हैं कि '' गढ़वाल की वीरगाथाओं 'पंवाड़ा' कहते हैं। यह परम्परा राजस्थान, गुजरात में भी पाई जाती है। गढ़वाल-कुमांऊ की लोकगाथाओं पर दृष्टि डालने पर यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि तेरहवीं षताब्दी से लेकर अठारहवीं षताब्दी के कालखण्ड में ऐसी घटनाऐं प्रायः घटती रही हैं जिनके माध्यम से ऐतिहासिक घटनाऐंस्थान पाती रही हैं''।[5] वर्तमान समय में यह अत्यन्त प्रासंगिक है कि पुरातन जैसी घटनाओं को नाटकों द्वारा या फिल्मों द्वारा प्रदर्षित करके नई पीढ़ी को भी इससे जोड़ने का प्रयास किया जाता है ताकि युवा पीढ़ी इससे कुछ सीख हासिल करे। गढ़वाल के अनेक विद्वानों द्वारा समय-समय पर यह सराहनीय प्रयास किया जाता है कि पूर्वजों के संघर्ष व उपलब्धि को नई पीढ़ी समझ सके व महसूस कर सके। क्योंकि सुदूर अंचलों में बसे होने का भी इतिहास है। यहां

पुरातन जातियों का भी इतिहास है उनके आपसी संघर्ष व बाहरी जातियों से संघर्ष की कथाऐं भी इतिहास में दर्ज है। इन्हीं की प्रेरक जानकारियों से आने वाली पीढ़ियों में उत्साह व स्फूर्ति का संचार होता है। लोकप्रिय साहित्य भी वही कहलाता है जो समाज की साक्षात् अभिव्यक्ति हो। इसलिए गढ़वाल का साहित्य यहां के अनुभवों का भंडार है। गढ़वाल के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण बात जो आष्चर्यचकित करती है यह है कि जितनी भी लोकगाथाऐं गायी जाती हैं अथवा प्रचलित हैं उन सबके रचियता अज्ञात हैं कहीं भी इतनी शानदार लोकगाथाओं को जीवन्त रखने वाले रचनाकार का कुछ भी परिचय नहीं है।

लोकगीत- गढ़वाल की सांस्कृतिक परंपराओं के वाहक यहां के लोकगीत हैं। अपनी-अपनी बोली में इन्हें हैं। इन्हीं प्राकृतिक उपादानों से लोकगीतों के मधुर स्वर फूट पड़ते हैं। श्री मोहनलाल बाबुलकर अपनी पुस्तक 'गढ़वाली साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन' में उल्लेख करते हैं कि "लोक की ये सभी अभिव्यक्तियां, जिनमें लोक रचना षक्ति के दर्षन मिलते हैं, लोकसाहित्य है और यह लोकसाहित्य लोकवार्ता का अंग है। यह दूसरी बात है कि इन्हें हम अलग-अलग नामों से पुकारें, लेकिन जहां रचना का प्रष्न आता है वहां हम इन्हें लोक से भिन्न और बाहर की वस्तु नहीं कह सकते हैं"।[6] लोकसाहित्य में अथवा लोक की मौखिक अभिव्यक्ति में लोककथा, लोकगाथा, लोकगीत, लोकनाट्य, लोकोक्तियां और अन्य धार्मिक व परंपरागत अभिव्यक्तियां लोकजगत की महत्वपूर्ण विरासत हैं। उत्तराखण्ड की संस्कृति में वादन, गायन व नृत्य का भी अमूल्य योगदान है तथा यहां के साहित्य में भी इसका उल्लेख है। गढ़वाल में निरंतर किसी भी षुभकार्य में मांगलिक गीत गाये जाते हैं। जब से गढ़वाल का साहित्य मौखिक रूप से भी सुनाया या गाया जाता रहा लोकगीत मुख्य मनोरंजन व भावनात्मक साधन रहा है,लेकिन जब लिखित साहित्य का श्रीगणेष हुआ तब से यह विधा गढ़वाल के जन-जन के अन्तमन को पढ़ती व जोड़ती आयी है। लोकसाहित्य के मुख्य आधार विन्दुओं में लोकगीतों की भी महती भूमिका है। लोकगीत यहां की प्रकृति, पहाड़, बुग्याल, नदियों, घने वनों, सीढ़ीनुमा खेतों, आस्था के मठ-मन्दिरों इत्यादि को प्रदर्षित करते हुए भावनात्मक रूप से जन-जन के मध्य अपनी उपस्थिति दर्ज करवाते रहे हैं। डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने अपनी पुस्तक में लोकगीतों को प्रमुख 12 भागों में विभाजित किया है। जो इस प्रकार हैं- "1-मांगल (क) आह्नवान गीत (ख) पूजा गीत (ग) विवाह गीत (च) लोरियां (बहुत कम मिलते हैं), 2-झुमैलो (वेदना और प्रेम के गीत) (क) झुमैलो (ख) छोपती (ग) लामण, (3) थड्या गीत या बासनती गीत, 4- बाजूबन्द (पीतात्मक संवाद), 5- खुदेड़ (विरह के गीत), 6-चैंफला (मिलन के गीत), (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चार फलों की उपलब्धि), 7- कुलाचार (औजियों द्वारा गुणगान), विरूदावली, 8- चैमासा (वर्षाकाल), 9- बारामासा (बारह महीनों के वर्णन), 10-पट-उपदेशात्मक (सूक्ति वाले नीतिगत), 11- सामयिक गीत (वादियों और सामयिक प्रसंगों के गीत) 12- राष्ट्रीय गीत (राष्ट्र चेतना के गीत)"।[7] गढ़वाल का हर एक व्यक्ति समय-समय पर इन बिन्दुओं से सम्बन्धित लोकगीतों को गाते रहते हैं, गुनगुनाते रहते हैं। यहां के गीतों में नृत्य के भी भाव समाहित रहते हैं। अद्भुद परंपरा व परस्पर समन्वय के साथ अपनी ऐतिहासिक परंपरा को अग्रेसित करता गढ़वाल का यह क्षेत्र स्वयं में संगीतस्थली है। यहां का कण-कण व हर एक स्थान व दृष्य एक लोकगीत रचने का सामर्थ्य रखता है। ऐसे ही भाव कल्पित संवेदनाओं के साथ जुड़कर मधुर संगीतमय लोकगीत कहीं भी गाया व सुनाया जाता है। यहां की प्राकृतिक सुन्दरता को सजीवता से निहारने व पर्यटन के दृष्टिगत जब आमजन पहुंचते हैं तो वे भी अपनी मातृभाशा में गीतों को गुनगुना जाते हैं। सम्पूर्ण गढ़वाल देवतुल्य हिमालय की गोद में रचा-बसा है। गढ़वाल में जागर भी अपना विशेष महत्व रखते हैं। जागर सम्पूर्ण व कुमांऊ में प्रचलित देवस्तुति है। अपनी-अपनी बोली में इसे समय-समय पर गाया जाता है। श्री गिरीष सुन्दरियाल अपनी पुस्तक 'गढ़वाल की लोककथाऐं' में उल्लेख करते हैं कि "गढ़वाल में कृष्ण का जागर सबसे अधिक लोकप्रिय है। यहां उन्हें नागर्जा या नागरजा कहा जाता है। इसके अलावा जिन देवताओं की यहां नृत्यमयी पूजा की जाती है उनमें कई स्थानीय देवी-देवता भी हैं। इसके साथ ही पांडवपूजा (पंडवार्ता) तथा विभिन्न देवी-देवताओं के मंडाण भी गढ़वाल में समय-समय पर आययोजित होते रहते हैं"।[8] यहां का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व अतुलनीय है। यहां की अनेक जानकारियां लोकगीतों, पंवाड़ों, व कथाओं आदि में प्राप्त होती है। यह क्षेत्र जितना शान्त, लोकप्रिय एवं आध्यात्म के अनुकूल है यहां का पुरातन इतिहास उतना ही विकट संघर्षपूर्ण एवं अनेक उतार-चढ़ाव से भरपूर रहा है।

लोकजन पर प्रभाव - गढ़वाल की लोकविधाओं का यहां के जन-जन में गहरी पैठ है। गढ़वाल हिमालय के सौन्दर्य की अप्रतिम प्रषंसा समस्त धार्मिक ग्रन्थों व अनेक साहित्यिक पुस्तकों में समाहित है। यहां की विविध भौगोलिकता के साथ-साथ सौन्दर्य के नये आयाम जोड़ते हैं इसी प्रकार यहां की नदियां व गहरी घाटियां सुन्दर वन व बुग्याल यहां की पहचान है। पुरातन घटनाक्रमों से जुड़ी हुई सभी विधाओं से लोकजन प्रभावित रहता है। साहित्य के आलोक में देखने पर विदित होता है कि सभी जन हर एक परिस्थिति को खुद से जोड़कर देखते हैं। क्योंकि यहां के लोकगीतों, कथाओं, गाथाओं तथा लोकनाट्यों व फिल्मों में भी पहाड़ की संघर्षमय जीवनषैली की प्रत्यक्ष तस्वीर सामने आती है। पुरातन समय से घटित जनजीवन की तस्वीर वर्तमान में भी नई पीढ़ी के लिए प्रेरक प्रसंग है। लोकजन पर इन लोकगीतों का गहरा प्रभाव है यहां के लोग सुदूर अंचलों में जीविकोपार्जन के लिए जाते रहते हैं, इसी क्रम में यदि कोई लोकगीत

इनको सुनने में मिल जाता है तो मन भावविह्नवल हो जाता है और वह अपनी मातृभूमि की याद में वेचैन हो जाता है। लोकगीत का यही प्रमुख प्रभाव है। श्री रमाकान्त बेंजवाल अपनी पुस्तक 'गढ़वाल हिमालय (इतिहास, संस्कृति, भाषा, यात्रा एवं पर्यटन) में उल्लेख करते हैं कि "गढ़वाल प्राचीनकाल से ही हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का क्षेत्र रहा है इस क्षेत्र में मानव अस्तित्व कब से है, इतिहास नहीं मिलता। जिस क्षेत्र के राजा का ही अतीत प्रमाणों के अभाव में अंधेरे में छिपा हो, वहां की प्रजा का इतिहास, कि वे किस जाति के हैं, कहां से आये, तथा कब से यहां रह रहे हैं। छिटपुट अभिलेखों के अलावा अनुमान से ही लिखा जा सकता है"।[9] लेकिन यहां के आमजन को अपनी मातृभाषा से गहरा प्रेम है। वर्तमान में अनेक लोककलाकारों व मंचीय कवियों द्वारा भी अपनी भाशा में काव्य पाठ व जनगीत इत्यादि की प्रस्तुति की जाती है। इसे भाषाई आकर्षण को बढ़ावा मिल रहा है। गढ़वाल के लोग अपनी पुरानी विरासत को संप्रेषित होते देखने में वाकई सुखद और परमसंतोष महसूस करते हैं, क्योंकि खेती करते हुए, जंगल जाते हुए, घास लाते हुए, हल चलाते हुए, पशुओं की देखभाल करते हुए, पहाड़ के लोग खासतौर पर महिलाऐं अपने मायके को याद करके पारम्परिक लोकगीत गुनगुनाती हैं। यही जुड़ाव भाषागत व सांस्कृतिक रूप से अत्यन्त मजबूत व प्रेरक है। लोकसाहित्य के विषय में 'नरेन्द्र सिंह नेगी के गीतों में जनसरोकार' नामक पुस्तक में डा. अजीत पंवार उल्लेख करते हैं कि "इस दुनियां में जिस भी वस्तु की रचना हुई हो, चाहे वह गीत हो, कविता हो, कहानी हो, नाटक हो, उपन्यास हो, चित्र हो या फिर दुनियां का कोई ऐसा आविष्कार हो जिसने विश्व में क्रान्ति ला दी हो, तो दुनियां उस व्यक्ति को नहीं बल्कि उसकी रचनाओं (आविष्कार) से उसे जानेगी। जीवन के संघर्षों के दौरान जिन कठिन राहों पर वह चला होगा, वह स्थान और राहें उसकी सफलता की कहानी कहेंगे। कर्म प्रधान मनुष्य ने सुख-दुख के पलों को भी हंसते हुए जिया है"।[10] गढ़वाल की परंपराओं व संस्कृति को अग्रेसित करने में ऐसे ही कठोर संकल्प की आवष्यकता है। और यह भी सत्य है कि अनेक विद्वानों ने कठोर संघर्ष से गढ़वाल की संघर्षमय जीवनचर्या को साहित्य का विषय बनाया है। जिसमें लोककथाऐं, लोकगाथाऐं, नाटक, लोकगीत या कविताओं के माध्यम से प्रस्तुति व्यक्ति की गयी है। परंपराऐं थोड़े-थोड़े स्थानों में बदलती भी रहती हैं। सांस्कृतिक बदलाव भी गढ़वाल में कुछ दूरी पर अनेक रूपों में देखने को मिलते हैं। आमजन को अपनी बोली-भाषा का रसास्वादन करने का अवसर प्रदान होता है वर्तमान में अनेक लोककलाकारों व मंचीय कवियों द्वारा भी अपनी भाषा में काव्यपाठ व जनगीत इत्यादि की प्रस्तुति की जाती है, इससे भाषाई आकर्षण को बढ़ावा मिल रहा है। गढ़वाल के लोग अपनी पुरानी विरासत को संप्रेषित होते देखने में उत्साह व परमसंतोष का अनुभव करते हैं। क्योंकि खेती करते हुए, जंगल के लिए जाते हुए, हल चलाते हुए, पषुओं की देखभाल करते हुए, चारा लाते हुए, खासतौर पर पहाड़ की महिलाऐं अपनी मायके की याद में पारंपरिक लोकगीत गुनगुनाती हैं व उससे भवनात्मक जुड़ाव महसूस करती हैं। यही जुड़ाव यहां की सांस्कृतिक व सामाजिक एकता का सशक्त केन्द्र बिन्दु है जिस पर पूरा गांव व समाज जुड़ा हुआ है। और परंपराऐं अस्तित्व में हैं। जिनकी वर्तमान में भी अति आवश्यकता है।

निष्कर्ष - गढ़वाल-कुमांऊ की लोककथाओं व लोकगाथाओं में अनेक राजसी, आक्रमणों की गाथाऐं समायोजित होती हैं। क्योंकि गढ़वाल व इन क्षेत्रों में तेरहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक के कालखण्ड में छुट-पुट युद्ध होते ही रहते थे। अनेक ठाकुरी राजा या कोई अन्य अचानक से आक्रमण करके पड़ोसी राज्य में अशान्ति मचा देता था। ये सभी घटनाक्रम यहां के साहित्यिक लोकगाथाओं के प्रमुख सन्दर्भ हैं। जिनमें अनेक संघर्षों की कहानियां, वीरों व वीरांगनाओं की कहानियां व संघर्षों से उत्पन्न स्थितियों व परिस्थितियों का वर्णन समाहित है। गढ़वाल में अनेकों ऋषि-मुनियों के आगमन होने यहां तपस्या करने व उनके द्वारा ग्रन्थों की रचना करने जैसे प्रसंगों का भी अनेक लोककथाओं में वर्णन है। संस्कृति साहित्य और लोकजीवन के रस, राग, और श्वॉस लोक के विराट महोत्सव से ही प्राप्त होते हैं। अनंतकाल से वर्तमान तक मनुष्य की सार्थकता हेतु संघर्षयात्रा लोक में सुरक्षित है। इसका संवेदनात्मक भाव लोकसाहित्य द्वारा प्रकट होता है। अनेक षोधकर्ताओं ने भी लोकसाहित्य से जुड़ी अनेक विधाओं के सर्वांगीण अध्ययन के लिए उनके विभिन्न उपादानों का सम्यक् रूप से विष्लेषण करना आवष्यक समझा। अनेक ग्रन्थों में विद्वतजनों ने अपने शोध व संचित अनुभव से यह निष्कर्ष निकाला है कि नीतिशास्त्र, विवेकशास्त्र, साहित्यशास्त्र, और भाशाशास्त्र के कृत्रिम नियमों का जहां बन्धन नहीं होता है तथा जहां मनुष्य के मनोभावों का नैसर्गिक प्रवाह विना रूकावट के निरन्तर आगे बढ़ता है वही साहित्य जीवन में गहण करने के लिए आसान है। आधुनिक समय में भी पुरातन विधाओं से नई पीढ़ी का कितना जुड़ाव है, यह इस बात से समझा जा सकता है कि किसी भी भाषाई काव्यपाठ, नाटक, गढ़वाली फिल्म या लोकगीत में पहाड़ों के दृश्य और वहां के अनेक दिनचर्या की तस्वीरें पूरा ध्यान खींच लेती हैं। इनमें पुरातनकाल की तस्वीरें उभारने का प्रयास किया जाता है जिससे कि उस समय के संघर्ष व घटित परिस्थितियों का अनुमान लगाया जाता है। इसके साथ ही लोग अपने पूर्वजों के कठिनता के बाबजूद दिये गये योगदान को महसूस करते हैं। अनेक नवीन लेखकों व रचनाकारों ने पुरातन काल के जागर, लोककथाओं और लोकगाथाओं के साथ लोकगीतों को भी नये स्वरूप में ढालकर रोचक व भावप्रधान बनाकर प्रस्तुत करने का सत्त प्रयास किया है पुराने मांगलगीत, बाजूबन्द,

चैंफला, विवाह से सम्बन्धित गीत व जागर जब नये गीत व संगीत के साथ पहाड़ के जनसमुदाय के मध्य उपस्थित होते हैं तो इनके प्रति सहज आकर्षण उभर आता है। इसीलिए ये सभी विधाऐं अत्यन्त लोकप्रिय हैं। और सम्पूर्ण गढ़वाल के लिए यह जिम्मेदारी है कि वह इन पुरानी विरासतों को संजोकर रखे व पुरातन समय के संघर्ष को सदैव स्मरण रखे। तभी संस्कृति में इनकी सार्थकता व सफलता सिद्ध समझी जायेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ –

(1) 'शैलेश' डा. हरिदत्त भट्ट: गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, पृ. सं. 13

(2) नेगी डा. शन्तन सिंह: मध्य हिमालय का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. सं. 18.19

(3) बाबुलकर मोहनलाल: गढ़वाली लोकसाहित्य की प्रस्तावना, पृ. सं. 218

(4) चातक डा. गोविन्द: उत्तराखण्ड की लोकगाथाऐं, पृ. सं. 4 एवं 5

(5) नौटियाल डा. शिवानन्द: गढ़वाल की लोकगाथाऐं, पृ. सं. 08

(6) बाबुलकर श्री मोहनलाल: गढ़वाली साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ. सं. 27

(7) 'शैलेश' डा. हरिदत्त भट्ट: गढ़वाली भाशा और उसका साहित्य, पृ. सं. 132.133

(8) सुन्दरियाल गिरीश: गढ़वाल की लोककथाऐं, पृ. सं. 24

(9) बेंजवाल रमाकान्त: गढ़वाल हिमालय (इतिहास, संस्कृति, भाषा, यात्रा एवं पर्यटन), पृ. सं. 47

(10) पंवार डा. अजीत: नरेन्द्र सिंह नेगी के गीतों में जनसरोकार, पृ. सं. 210